भक्त कण्णप्पर

दक्षिण के श्रीकालहस्ती के निकट का क्षेत्र पोत्ताप्पिनाडु कहलाता था। प्राचीन काल में नागन नाम का एक व्याधराज इस क्षेत्र का शासक था। उसकी राजधानी 'उडुप्पूर' थी। वह बड़ा क्रूर था। उसका काम था हत्या करना। उसके बाणों की नोक में जहर लगा रहता था, जो आग के समान जलता था। धनुष-बाण चलाने में वह अत्यन्त निपुण था। सारे दिन उसके शिकार में ही बीतते थे। जंगलों में सदा उसके कुत्तों के भोंकने और उसके नौकरों के पुकारने की आवाज गूँजती रहती थी। वह सुब्रह्मण्य (सम्भवत: कार्तिक स्वामी) नामक पहाड़ी देवता का भक्त था। उसकी पूजा वह बड़े-बड़े नाच-गान और भोज के साथ किया करता था। क्रोधोन्मत्त सिंह के समान वह बली था। उसकी पत्नी का नाम तत्ता था। वह भी सिंहनी के ही समान डरावनी थी। वह उजले शङ्ख और सिंह के दाँतों की माला पहनती थी। दीर्घकालतक नि:सन्तान रहने के बाद मुरुगन (कार्तिकेय) की उपासना के फलस्वरूप नागन को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम तिण्णन रक्खा गया। तिण्ण का अर्थ भारी होता है। अपने लड़के को गोद में उठाने पर नाग को वह भारी लगा, इसलिये उसका नाम उसने तिण्णन रख दिया।

तिण्णन सोलह वर्ष की उम्र में ही धनुष-बाण, भाला, तोमर और वीरों के योग्य दूसरे अस्त्र-शस्त्र चलाने में बहुत निपुण हो गया। नाग को बुढ़ापा आता हुआ मालूम हुआ। उसने तिण्णन को अपनी जाति का सरदार बना दिया। तिण्णन नियमानुसार पहले-पहल आखेट को निकला। उसके साथ नाणन और कादन दो नौकर भी थे। अपने साथियों के साथ उसने बड़े कौशल के साथ शिकार किया। इसी बीच एक जंगली सूअर जाल काटकर भाग गया। उसका पीछा करते हुए तिण्णन बहुत दूर बीहड़ जंगल में पहुँच गया। काफी दौड़-धूप के बाद तिण्णन ने सूअर को मार डाला। उसके दोनों नौकरों ने सूअर को उठा लिया और आगे बढ़ चले। रास्तें में उनको जोरों की भूख लगी।

तिण्णन ने पूछा-'यहाँ मीठा पानी कहाँ मिलेगा? तुम्हें कुछ पता है?'

नाणन बोला-'उस विशाल शालवृक्ष के उस पार एक पहाड़ी है और उसी के नीचे सुवर्णा नदी (वोनमुगलि) बहती है।'

तिण्णन ने कहा-'चलो, तब वहीं चलें।' तीनों चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर उसके साथियों ने बताया कि वह श्रीकालहस्ती पर्वत है जहाँ 'कुडुमिदेव' का मंदिर है। पहाड़ी पर चढ़ने पर भगवान् शिव के स्वयंभूलिंग के दर्शन हो सकते हैं। तिण्णन ने पहाड़ी पर चढ़ने की इच्छा जतायी।

नाणन ने भी जोर दिया, 'हाँ यह पहाड़ बहुत ही रमणीक है। शिखरपर एक मन्दिर है, जिसमें भगवान् जटाजूटधारी की मूर्ति है। आप उनकी पूजा कर सकते हैं।'

पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते तिण्णन की भूख-प्यास गायब हो गयी। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो सिर पर से कोई भार उतरा जाता हो। उसे एक प्रकार का अनिर्वचनीय आनन्द मिलने लगा।

उसके भीतर कोई नयी ही अभिलाषा उत्पन्न हो गयी।

वह बोला–'नाणन! तुम्हीं ने कहा है कि ऊपर भगवान् जटाजूटधारी का मन्दिर है; अतः चलो, उनके दर्शन कर आयें।'

वे शिखर पर चढ़कर मन्दिर के सामने पहुँचे। पूर्वजन्म के संस्कारों के सहसा जाग जाने के कारण देवप्रतिमा को देखते ही भावुक–हृदय तिण्णन ने लपककर उसे प्रेमालिङ्गन में बाँध लिया। उसके आनन्द का पार न रहा। उसकी आँखों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। वह कहने लगा–'प्यारे भगवन्! क्या तुम यहाँ अकेले ही जंगल में जंगली जन्तुओं के बीच रहते हो? यहाँ तुम्हारा कोई मित्र नहीं है?' भक्ति से उसका हृदय गद्गद हो गया। उसकी इस समाधिस्थ अवस्था में धनुष सरक कर गिर गया। मूर्ति के सिर पर कुछ हरे पत्ते, जंगली फूल और शीतल जल देखकर वह दुःखित हो गया और कहने लगा–'किस नराधम ने मेरे स्वामी के सिर पर ये चीजें रक्खी हैं?'

नाणन ने जवाब दिया–'आपके पूज्य पिता के साथ मैं यहाँ बहुत बार आया हूँ। हमने एक ब्राह्मण को यह करते देखा था। उसने देवता के सिर पर ठंडा पानी डाल दिया और फूल–पत्तियाँ रख दीं। फिर वह खूब उसी तरह बड़बडाता रहा, जैसा कि हम ढोल पीट–पीटकर देवता के सामने किया करते हैं। उसने आज भी जरूर वही किया होगा।'

तिण्णन को भी पूजा करने की बड़ी प्रबल इच्छा थी; किंतु ढंग नहीं मालूम होने से उसने सोचा कि 'मैं भी क्यों न इसी तरह भूखे भगवान् को मांस लाकर खिलाऊँ।' तिण्णन मन्दिर से रवाना हुआ, मगर तुरंत ही लौट आया। वह बार–बार जाने की कोशिश करता था, किंतु इस नयी निधि को छोड़ने की इच्छा न होने से लौट आता था। उसकी हालत उसी गाय की–सी हो गयी, जो अपने पहले बछड़े को नहीं छोड़ना चाहती।

उसने सरलता से कहा–'प्यारे मालिक! मैं जाकर तेरे लिये अपने हाथों मांस पकाकर लाऊँगा। तुझे यों अकेला और असहाय छोड़ने को जी नहीं चाहता। किंतु तुझे भूख लग रही है और जाकर तेरे खाने के लिये कुछ लाना ही होगा।' उसके आँखों में आँसू भर आते थे। इसी प्रकार की मानसिक अवस्था में वह जंगली शिकारी मन्दिर से चला। नाणन उसके पीछे–पीछे चला। पहाड़ी के नीचे आने पर उसने दूसरे नौकर को सारी कथा कह सुनायी। यह भी कहा कि मालिक ने मूर्ति का आलिङ्गन किया था, उसे देरतक न छोड़ा और अब देवता के लिये पका हुआ मांस ले जाने को आये हैं।

नौकर रोने लगे–'हमारा तो सर्वनाश हो गया। सरदार पागल हो गये।' तिण्णन ने उनके रोने की जरा भी परवा न की। उसने मांस पकाया। फिर उसे चखकर देखा कि ठीक–ठीक पका तो है, स्वाद ठीक है और सन्तोष हो जाने पर पहाड़ पर ले जाने के लिये उसे शाल के पत्ते में लपेटकर रक्खा।

नौकरों ने मन–ही–मन कहा–'पागल! कर क्या रहा है? पका हुआ मांस मुँह में डालकर चखता है और इतना भूखा होने पर भी उसे बिना खाये ही पत्ते पर रख देता है। अपनी भूख–प्यास

की तो कोई बात ही नहीं करता। हमें भी मांस देने का नाम नहीं लेता। अपने देवता के लिये थोड़ा सा चुनकर बाकी फेंक देता है। इसका सिर फिर गया है, अब अच्छा नहीं हो सकता। खैर, चलो, इसके बाप से यह बात कह दें।' दोनों नौकर उसे छोड़कर चले गये। तिण्णन ने न तो उनकी बात सुनी और न उनका जाना ही उसे मालूम हुआ। वह तो अपने ही काम में मग्न था। अभिषेक के लिये उसने अपने मुँह में ताजा पानी भर लिया; क्योंकि उसके पास कोई बरतन नहीं था। चढ़ाने के लिये अपने बालों में उसने कुछ जंगली सुगन्धित फूल खोंस लिये। एक हाथ में उसने मांस लिया और दूसरे में आत्मरक्षा के लिये तीर-धनुष; और वह दोपहर की कड़कड़ाती धूप में पहाड़ पर चढ़ने लगा। यह सोचकर कि देवता भूखे होंगे, वह और भी तेजी से चलने लगा। शिखर पर पहुँचने के बाद वह मन्दिर में जूता पहने ही दौड़कर घुस गया। देवता के सिर पर से पुराने फूल उसने बड़े स्नेह के साथ पैरों से हटाये, अभिषेक के लिये ऊपर से कुल्ला कर दिया और देवता के आगे मांस रखकर अपनी साधारण बोली में खाने का आग्रह करने लगा। अँधेरा हो आया। तिण्णन ने सोचा, 'यह समय तो जंगली जानवरों के घूमने का है। देवता को यहाँ अकेले छोड़कर मैं नहीं जा सकता।' उसने हाथ में धनुष-बाण लेकर रातभर पहरा दिया। सबेरा होने पर जब चिड़ियाँ चहचहाने लगीं, तब वह देवता के आगे प्रणिपात और प्रार्थना करके ताजा मांस लाने चला गया।

कुडुमिदेव की पूजा करनेवाला शिव गोचरियार नामक ब्राह्मण पुजारी नियमानुसार प्रातःकाल आया। मन्दिर में जूतों और कुत्तों के पैरों की छाप देखकर तथा चारों ओर हाड़-मांस छितराया हुआ देखकर वह बहुत ही घबरा गया, विलाप करने लगा, 'हाय, भगवन्! अब मैं क्या करूँ? किसी जंगली शिकारी ने मन्दिर भ्रष्ट कर दिया है!' लाचार उसने झाड़-बुहारकर साफ किया। मांस के टुकड़े कहीं पैरों से छू न जायँ, इसलिये उसे बड़ी कठिनता से इधर-उधर चलना पड़ता था। फिर वह नदी में से स्नान करके आया और मन्दिर की सम्पूर्ण शुद्धि की। आँखों में आँसू भरकर देवता के आगे प्रणिपात करने लगा। फिर उठकर उसने वेद-ऋचाओं से परम पुरुष परमात्मा की स्तुति की। पूजा समाप्त करके वह अपने तपोवन को लौट गया।

तिण्णन ने कई जानवर मारे और पिछले दिन के समान चुनकर मांस पकाया और चख-चखकर अच्छे-अच्छे टुकड़े अलग रख लिये। उसने कई अच्छे ताजे मधु के छत्ते इकट्ठे किये, उनका मधु मांस में निचोड़ा। फिर वह मुँह में पानी भरकर, बालों में फूल खोंसकर, एक हाथ में मांस लिये हुए और दूसरे में धनुष-बाण लेकर पहाड़ पर दौड़ा। ज्यों-ज्यों मन्दिर निकट आता जाता था, उसकी आतुरता भी बढ़ती जाती थी। वह बड़े-बड़े डग भरता चला। उसने देवता के सिर पर से फूल-पत्ते पैर से ठेलकर साफ किये, कुल्ला करके अभिषेक कराया और यह कहते हुए मांस का उपहार सामने रक्खा, 'देवता! कल से आज का मांस मीठा है। कल तो केवल सूअर का मांस था। आज तो बहुत से स्वादिष्ट जानवरों के मांस चखकर और खूब स्वादिष्ट चुनकर लाया हूँ। उसमें मधु भी निचोड़ा है।'

इस तरह तिण्णन के पाँच दिन, दिनभर शिकार करके देवता के लिये मांस इकट्ठा करने और रातभर पहरा देने में बीते। उसे आप खाने-पीने की सुध ही न रही। तिण्णन के चले जाने के बाद प्रतिदिन ब्राह्मण पुजारी आते और रात के इस भ्रष्टाचार पर विलाप करते, मन्दिर धोकर साफ करते, नदी-स्नान करके शुद्धि करते और पूजा-पाठ करके अपने स्थान पर लौट जाते। जब इतने दिनों तक तिण्णन नहीं लौटा, तब उसके सभी सम्बन्धी और मां-बाप निराश हो गये। तिण्णन के पिता नागन ने पुत्र को घर लौटने का बहुत आग्रह किया पर तिण्णन के हृदय में तो केवल कालहस्तिनाथ की सेवा का भाव बसा हुआ था। अतः वह नहीं लौटा।

ब्राह्मण पुजारी शिव गोचरियार रोज ही हार्दिक प्रार्थना करते-'प्रभु! मेरे पाप क्षमा करो। ऐसा भ्रष्टाचार रोको।' एक रात स्वप्न में परमेश्वर उनके सामने आकर बोले, 'मित्र! तुम मेरे इस प्रिय शिकारी भक्त को नहीं जानते। यह मत समझो कि वह निरा शिकारी ही है। वह तो बिल्कुल ही प्रेममय है। वह मेरे सिवा और कुछ जानता ही नहीं। वह जो कुछ करता है, मुझको प्रसन्न करने के लिये ही। जब वह अपने जूते की नोक से मेरे सिर पर से सूखे फूल हटाता है, तब उसका स्पर्श मुझे प्रिय पुत्र कुमारदेव के आलिङ्गन से भी अधिक प्रिय लगता है। जब मुझपर वह प्रेम और भक्ति से कुल्ला करता है, तब वह कुल्ले का ही पानी मुझे गङ्गाजल से भी अधिक पवित्र जान पड़ता है। वह अनपढ़ मूर्ख सच्चे स्वाभाविक प्रेम और भक्ति से जो फूल अपने बालों में से निकाल कर मुझपर चढ़ाता है, वे मुझे स्वर्ग में देवताओं के भी चढ़ाये फूलों से अधिक प्रिय लगते हैं। और अपनी मातृभाषा में वह आनन्द और भक्ति से भरकर जो थोड़े से शब्द कहकर, मेरे सिवा सारी दुनिया का भान भूलकर मुझे प्रसाद पाने को कहता है, वे शब्द मेरे कानों में ऋषि-मुनियों के वेद-पाठ से कहीं अधिक मीठे लगते हैं। यदि उसकी भक्ति का महत्त्व देखना हो तो कल आकर मेरे पीछे खड़े हो जाना।'

इस आदेश के बाद पुजारी को रातभर नींद नहीं आयी। प्रातःकाल वह नियमानुसार मन्दिर में पहुँचा और पूजा-पाठ समाप्त करके मूर्ति के पीछे जा छिपा। तिण्णन की पूजा का यह छठा दिन था। और दिनों से आज उसे कुछ देर हो गयी थी। इसलिये वह पैर बढ़ाता आया। रास्ते में उसे अपशकुन हुए, वह सोचने लगा, 'कहीं खून गिरना चाहिये। कहीं देवता को कुछ हुआ तो नहीं?' इसलिये वह दौड़ा। अपने असगुन को पूरा होते देखकर उसके शोक का पार न रहा। हाय! देवता को कितना कष्ट हो रहा था; क्योंकि उनकी दाहिनी आँख से खून की अविरल धारा बह रही थी। तिण्णन यह दुःखद दृश्य नहीं देख सका। वह रोने, विलाप करने लगा। जमीन पर लोटने लगा। फिर उठा। उठकर भगवान् की आँख से खून पोछ दिया, परन्तु तो भी खून बहना रुका नहीं। वह फिर दुःखातुर होकर गिर पड़ा।

तिण्णन बिल्कुल ही घबरा गया। उसका चित्त अत्यन्त दुःखी हो गया। वह समझता नहीं था कि क्या करना चाहिये। थोड़ी देर बाद वह उठा और तीर-धनुष लेकर उस आदमी या जानवर को मारने निकला, जिसने देवता की यह दुर्दशा की हो। परन्तु उसे कहीं कोई प्राणी नहीं दिखलायी पड़ा।

वह लौट आया और मूर्ति को छाती से लगा करके विलाप करने लगा, 'हाय! मैं महापापी हूँ। रास्ते के सभी अपशकुन सच्चे हुए हैं। भगवन्! पिता! मेरे प्यारे! तुम्हें क्या हुआ है? मैं तुम्हें क्या सहायता दूँ?' तब उसे कुछ जड़ी-बूटियों की याद आयी, जिन्हें उसकी जाति के लोग घावों पर लगाते थे। वह दौड़ा और जब लौटा तो जड़ी-बूटियों का एक गट्ठर लेकर। उन्हें उसने देवता की आँख में एक-एक कर निचोड़ दिया, पर इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। उस समय उसे शिकारियों की कहावत याद आयी कि 'मांस मांस से ही अच्छा होता है।' यह ख्याल आते ही उसके मन में आनन्द की नयी ही उमंग खेलने लगी। उसने देर न की। एक तेज बाण की नोक से अपनी दाहिनी आँख निकाल डाली और भगवान् की आँख पर धीरे से धरकर उसे दबाया और आश्चर्य कि इससे तुरंत खून का बहना रुक गया।

वह आनन्द से नाच उठा। ताल ठोक-ठोककर आनन्दोन्मत्त हो नाचने लगा। उसकी असीम प्रसन्नतापूर्ण हँसी और आनन्दध्वनि से मन्दिर गूँज उठा; पर यह क्या हुआ? अरे, इस बीच बाँयी आँख से भी खून बहने लगा। इस पर दु:ख और घबराहट में तिण्णन यह भूल गया कि वह क्या करे। परन्तु यह विस्मृति क्षणिक ही थी। तुरंत ही वह सँभल उठा और उसने कहा, 'मेरे-जैसा कौन मूर्ख होगा, जो इस पर शोक करता है? इसकी दवा तो मुझे मिल ही गयी है। अब भी मेरी एक आँख तो है।' तब देवता की बाँयी आँख पर अपना बायाँ पैर रखकर, जिससे उसे पता चले कि कहाँ आँख लगानी है-क्योंकि आँख निकालने के बाद उसे कुछ भी नहीं सूझेगा-उसने पहले से भी अधिक तेजी से बाँयी आँख के कोने में तीर की नोक लगायी। देवता उसकी इस भक्ति पर पुष्प बरसाने लगे। स्वयं भगवान् ने अपने हाथ बढ़ाकर तिण्णन का हाथ पकड़कर रोक लिया और कहा-'ठहरो, मेरे कण्णप्प! मेरे कण्णप्प! ठहर जाओ' (तमिल में कण=आँख, अप्प=वत्स, कण्णप्प=कण+अप्प)। फिर परमेश्वर ने कण्णप्प का हाथ पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया और कहा, 'त्याग और प्रेम की मूर्ति कण्णप्प! तू इसी भाँति सर्वदा मेरे पास रहा कर।' तिण्णन के नेत्र (कण्)-दान से प्रसन्न होकर प्रभु ने उन्हें कण्णपर नाम दिया।

ब्राह्मण पुजारी ने यह आश्चर्यजनक दृश्य देखा और सच्ची तथा सीधी-सादी भक्ति का रहस्य समझा। कण्णपर भील की भक्ति की पराकाष्ठा और अतुलनीय प्रेम के कारण कण्णप नायनार (शिवभक्त) के नाम से उन्हें सुन्दरमूर्ति ने सादर स्मरण किया है। चेक्किलारकृत पेरियपुराणम् (जिसे तिरुत्तोण्डरपुराणम् भी कहते हैं) में कण्णपर के चरित्र का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रस्तुत कथा का मूल स्रोत यही पुराण है। इस पुराण में 63 तमिल शिवभक्तों का वर्णन किया गया है, जिनमें से सुन्दरमूर्तिसहित तीन अन्य भक्तों का चरित्र-चित्रण इसी पुस्तक में यथास्थान किया जायगा।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित भक्तचरितांक तथा शिवांक और डॉ0 रवीन्द्रकुमार सेठ द्वारा लिखित एवं साहित्यशोध संस्थान, नई दिल्ली द्वारा 1994 में प्रकाशित सचित्र पेरियपुराणम् से ली गयी है।)

❁❁❁❁❁❁